INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCHES IN SOCIAL SCIENCES AND INFORMATION STUDIES
© VISHWASHANTI MULTIPURPOSE SOCIETY (Global Peace Multipurpose Society) R. No. MH-659/13(N)
www.vmsindia.org

समाजिक संदर्भो में आत्मकथा साहित्य

वि. वि. ढोमणे
एन. एम. डी. कॉलेज, गोंदिया (महाराष्ट्र) इंडिया
Corresponding Author : vinidhomne25@gmail.com

सारांश –

आत्मकथा साहित्य का मूल्य व्यक्तिगत कम और सामाजिक अधिक होता है। उसे प्रायः वही लोग लिखते है जिन्हे जीवन में कुछ ऐसी उपलब्धियां होती है जिनसे दूसरों को कुछ प्रेरणा मिल सके। वे जनहित के लक्ष्य से अपने दोष भी नही छिपाते । यदि आत्मकथा न लिखी जाती तो हमे आत्मकथाकारो के जीवन की न जाने कितने ऐसे तथ्यों का पता न चल पाता जो वर्तमान और भविष्य की पीढियों के लिये विविध संदेशों (उपदेशों और वर्जनाओं) का काम करते है। इतिहास को पुष्ट करने की दिशा में भी आत्मकथाओं का योगदान स्वयं सिध्द है। आत्मकथा की रचनात्मकता में कर्तव्य निर्वाह की उतनी बात नही होती कि वह अपने निकट जो कुछ है, उसे विज्ञापित ही करें । आत्मकथा चूंकि लेखन के समय की परिस्थिति, मनोवृत्ति का प्रतिबिंबन होता है । कृति के मूल्याकंन में कुछ प्रश्नों जैसे विचारधीन कृति के महत्वपूर्ण अंशो का अतीत संस्कृति के जनतांत्रिक ओर समाजवादी तत्वों से क्या संबंध है? ऐतिहासिक दृष्टि से उस कृति में कौन से तत्व मृत संस्कारों के प्रतिनिधि है, और कौन जीवन्त संस्कृति के प्रतीक है? उसमें अतीत का क्या है, ओर भविष्य के लिये क्या है, को उठाना ही उद्देश्य है।

खोजशब्द – आत्मकथा, सामाजिक, आत्मप्रकाशन, आत्मभिव्यक्ति, व्यक्तित्व.

परिचय –

मनुष्य का जीवन एक निरंतर खोज है । इस खोज के क्रम में उसने जो प्रयन्त किये है, वे ही सभ्यता और संस्कृति के विकास के मूल आधार है । आंतरिक व बाहय जगत को समझने व उनमें जीवन के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न मूल्यों की महत्ता को जानने के लिये 'आत्मकथा' से अच्छा 'साहित्य' क्या हो सकता है? प्राचीन ऋषियों ने कहा है कि ''यहॉ है मनुष्य का भौतिक जीवन और उसके चारों ओर है भौतिक जगत। इन दोनो को गंभीरता से परखे किन्तु मनुष्य का भी गहनता से अध्ययन होना चाहिये, जैसे उसका स्वभाव, उसकी चेतना, विचार, भावनाएँ, अहंकार और उसका स्वाभिमान दर्शाते है । ये भी अपने में आविष्कारों का एक विशाल समूह है। जिन पर शोध करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में प्राप्त ज्ञान बाहय जगत के रहस्यों के समझने में आगे ले जायेगा।'' आत्मकथा साहित्य जीवन के किसी भी पक्ष को उजागर करें या न करें किन्तु प्रत्येक आत्मकथा में 'सामाजिक पक्ष' अनिवार्य रूप से उजागर होता है। इस आधार पर हम आत्मकथाकार को उस जाति विशेष की सामाजिक शक्ति या सभ्यता का निर्देशक कह सकते है। आत्मकथा के व्दारा ही उसे आत्मकथाकारों की युग-युगांतर से व्यष्टि और समाष्टि, आत्म और परिवृति में जो मौलिक प्रगतिमूलक क्रिया-प्रतिक्रियात्मक संघर्ष हुआ है उसका पता चलता है । आत्मकथाकार ने जीवन संघर्ष में निरंतर घटित होने वाले असामजंस्य और वर्ग वैषम्य का विरोध कर किस प्रकार जीवनप्रद संतुलन प्राप्त किया। इस समस्त मानवीय कृतित्व और मानवमूल्यों के निर्माण का इतिहास, मनुष्य की समस्त विकासोन्मुखी सचेतन और अवचेतन, चेष्टा और परिणाम का विविध भाव, रूप, रस, गंधमय अनुभव आत्मकथा में अपनी विशिष्ट मूर्तित्त के साथ प्रतिबिम्बित होता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में सामाजिक संदर्भो के दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आत्मकथाओं का अनुशीलन किया गया है।

सामाजिक संदर्भो में आत्मकथा साहित्य - शोध कार्य

सामाजिक संदर्भो में आत्मकथा साहित्य का जब हम अनुशीलन करते है तो स्वतन्त्रता पूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर काल की सामाजिक जीवन की मूल्यवत्ता में हम अन्तर पाते है। स्वतन्त्रता के पहले भारतीय समाज की सोच एवं लक्ष्य कुछ अलग थे विदेशी शासन के दबाव में हमारा सामाजिक जीवन विसंगतियों से भर गया था, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता की ललक ने कुछ नवीन जीवन मूल्य स्थापित किये, जैसे समानता का अधिकार, तर्कपूर्ण दृष्टि, देश का भौतिक विकास, शिक्षा संबंधी चेतना तथा आजादी की चाहत इत्यादि। किन्तु स्वातन्त्र्योत्तर कालखण्ड में इन सभी जीवन मूल्यों के विकास की प्रतिबद्धता तो बढ़ी किन्तु उद्योग कारखानों तथा आर्थिक विकास के साथ भौतिकता की अभिवृद्धि भी हुई। औद्योगिक काल ने भौतिक लालसाओं को जन्म दिया। परिणामतः सामाजिक दृष्टिकोण तथा मूल्यों संबंधी वे परिवर्तन हुये जो स्वातंत्र्यपूर्व काल में नहीं हुयें थे। शील, अश्लील, नैतिक, अनैतिक संबंधी मान्यताओं में भी औद्योगिक समाज में कुछ शिथिलता आई किन्तु जड़मूल विकार जैसे अंधश्रद्धा, दहेज इत्यादि मे कोई इतना विशेष अन्तर नहीं आया। हिन्दी की कुछ आत्मकथायें दोनों ही कालखण्डों का प्रतिनिधित्व करती है। अतः इनमें सामाजिक मूल्यों का निर्वहन किस प्रकार से हुआ हैं तथा हमारी वैचारिकता मे परिवर्तन की पृष्ठभूमि किस प्रकार अभिव्यंजित हुई है। यह जानना जरूरी है। ये आत्मकथाये हमारी सामाजिकता को तथा उनके मूल्यों को किस प्रकार से रखती है। उसकी विवेचना हमने मूल्यों को समझने में मददगार सिद्ध होगी। कुछ महापुरूषों ने जिन्होने हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चेतना को आन्दोलित किया है। उनकी आत्मकथायें हिन्दी में अनूदित हुई है। इनका भी सम्यक विश्लेषण किये बिना हम अपने विषय के यथार्थ को सही परिप्रेक्ष्य में नही समझ सकते। अतः हिन्दी की आत्मकथायें जिसमें मुख्य रूप से सेठ गोविन्ददास की 'आत्मनिरिक्षण', हरिवंशराय बच्चन की 'क्या भूलूं क्या याद करूं', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा', यशपाल का 'सिंहावलोकन', पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर', रामप्रसाद 'बिस्मिल की आत्मकथा', सन्तराम का 'मेरे जीवन के अनुभव', आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी' (संकलित चन्द्रसेन द्वारा), राहुल सांकृत्यायन का 'मेरी जीवन यात्रा', वियोगी हरि की 'मेरा जीवन प्रवाह', श्री गणेश प्रसाद वर्णी की 'मेरी जीवन गाथा' जानकी देवी बजाज की 'मेरी जीवन यात्रा', मोरारजी देसाई का 'मेरा जीवन वृत्तांत', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'चांद सूरज से वीरन', भगवानदास केला का 'मेरा साहित्यिक जीवन', रामदरश मिश्र का 'जहां मैं खडा हूँ', 'रोशनी की पगडंडिया', रामविलास शर्मा की 'घर की बात' कुसुम अंसल की 'जो कहाँ नहीं गया', सद्गुरूशरण अवस्थी की 'मार्ग के गहरे चिन्ह', अमृतलाल नागर की 'टुकडे टुकडे दास्तान', खुशवन्त सिंह की 'सच, प्यार और थोड़ी सी शरारत' आदि।

इन आत्मकथाओं के अलावा महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, शंकरराव खरात, हंसा वाडकर, टालस्टाय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, नयनतारा सहगल, इंदिरा गांधी, दूर्गा खोटे, अमृता प्रीतम, कमलादास आदि की अनुदित आत्मकथाओं से महानुभावों के कुछ उद्धरण भी विषय के अनुशीलन में सहायता प्रदान करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। निश्चित तौर पर लेखक के व्यक्तिगत जीवन की झलक तो इन आत्मकथाओं में आती है, किन्तु वह अपने आप को बाहरी दुनिया के घटनाक्रम से कुछ इस प्रकार से संयोजित करता है कि वे समस्त घटनाक्रम हमारे सामाजिक जीवन की थाती बन जाती है। सामाजिक, राजनैतिक तथा वैश्विक घटनाक्रम के कई ऐसे संदर्भ मिल जाते है कि इतिहास बन जाते है। लेखक परिवेश के सामाजिक संदर्भो को कुछ इस प्रकार से बुनता है कि वह हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली मिसाल बन जाती है।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रमुख सामयिक घटना का सच्चा लेखा जोखा कई बार सही क्रम में हमें इस प्रकार के साहित्य से ही प्राप्त होता है। क्योकिं यहां पर लेखक अपनी बात को पूर्ण निरपेक्ष भाव से तथा बेबाकी से कहता है। अन्य स्थानों पर कुछ सामाजिक घटनाओं को रखने में बहुत से कारणों की वजह से थोडी सावधानी व सतर्कता बरतते है इसलिये सही मूल्यांकन नहीं होता है किन्तु आत्मकथा साहित्य में निःसंकोच विश्लेषण होने से सम्यक रूप से घटनाक्रम का हम अवगाहन कर सकते है।

राजनैतिक पुरूषों की आत्मकथा जहां राजनीति और देशकाल की घटनाओं को रखती है। वहीं तत्कालीन साहित्य की परिस्थितियाँ साहित्यकारों की आत्मकथा से प्राप्त हो जाती हैं। धार्मिक पुरूषों की आत्मकथा में इस क्षेत्र की

मान्यताओं का सटीक ब्यौरा बन जाते हैं। आचार्य चतुरसेन, विष्णु प्रभाकर ऐसे साहित्यकार है जिनकी आत्मकथायें साहित्य के इतिहास बोध को विवेचित कर देती है। राहुल जी घुम्मकड़ होने की वजह से सामाजिक जीवन के विस्तृत अनुभव अलग अलग क्षेत्रों की अपनी बांनगी से प्रगट होते हैं। राष्ट्र के विविध सांस्कृतिक परिदृश्य तथा भाषा और बोलियों के तथा लोकोक्तियों के आंचलिक प्रभाव भी कहीं न कहीं हमारी भाषायी समृद्धि के साक्ष देते हैं। वहीं भवानी दयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' तत्कालिन धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का बोध करवा कर स्वराज्य के संघर्ष कालीन हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित कर देती है। इस प्रकार का घटनाक्रम जब विभिन्न क्षेत्रों का मिल जाता है, तब निश्चित रूप से उसका विश्लेषण करके हम अपनी शब्द नीति का पथ समीचीन रूप से निर्धारित कर सकते है।

स्वातंत्र्योत्तर आत्मकथाओं का अवगाहन करने पर यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय जीवन में विकास की दिशा किस प्रकार की है। जीवन के जिस पक्ष का उद्घाटन इन आत्मकथाओं में हुआ है। यदि उनका सही तौर पर विवेचन किया जाय तो हमारे सामाजिक जीवन की अनेक, विद्रुपताओं और विसंगतियों पर अंकुश लगाने की एक सकारात्मक पहल सहज संभव है।

धार्मिक विकृतियाँ तथा धर्म के नाम पर कट्टरपंथी जड़ता एकात्मता बोध को किस प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट कर रही है। यह समझ लेने पर उस जड़ता को तोड़ने के लिये प्रबुध्दजन तथा कलमकार सही दिशा बोध दे सकते हैं। उदाहरण स्वरूप १९६८ में प्रकाशित, आबिद अली की आत्मकथा 'मजदूर से मिनिस्टर तक' का जिक्र किया जा सकता है। सहज रम्य हिन्दुस्तानी में लिखी गई यह आत्मकथा एक ऐसे लेखक की संघर्ष चेतना की मिसाल बन जाती है जो पिता के निधन के बाद मजदूरी करके जीवन यापन करता है। गांधीजी के आह्वान पर नौकरी को तिलांजलि देकर स्वतन्त्रता संघर्ष तथा अपनी लम्बी व्यापार यात्राओं के माध्यम से विविध क्षेत्रों के भ्रमण का एक अनुभव तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में राजनैतिक क्षितिज पर भी केन्द्रीय मंत्री मण्डल में भी जनसेवा हेतु क्रियाशीलता इत्यादि विलक्षण घटनाक्रम इस आत्मकथा को कुछ नये तेवर दे देता है। मूल्यों की दृष्टि से तो इसमें जहां जीवन से दो-दो हाथ करने की प्रेरणा है वहीं हिन्दू मुस्लिम एकता का रचनात्मक संदेश भी है। मजदूर से मंत्री तक की यात्राये श्रम के प्रति आस्था भाव का सृजन करने में मददगार सिद्ध होती है। इसी प्रकार बच्चन जी की आत्मकथा के तीनों खण्ड परिवारिकता, तथा सामाजिकता की महत्वपूर्ण मूल्यवत्ता समाज के सामने रख देते है। सामाजिक टूटन की आज की अवस्था में यह सब मूल्यवान है। साहित्य संबंधी तथा गहरी संवेदनाओं से जुड़े हुये उनके अनुभव जीवन मूल्य निर्वाह में अहम भूमिका रखते है। शिकार, खेती तथा संगीत की रसास्वादन वृत्ति वृंदावनलाल वर्मा के साहित्य की विशिष्टता है। यह यायावरी मूल्यों के साथ ही एक व्यापक सौन्दर्य दृष्टि देने में सक्षम है। राजनैतिक उतार चढ़ाव का दस्तावेज मोरारजी देसाई की 'मेरा जीवन वृतांत' है जो किसी भी राष्ट्र के इतिहास बोध का संवाहक होता है। मजेदारी तो ये है कि एक ओर जहां कूटनीतिक घटनाक्रमों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी इनका लगाव प्रकृति के साथ जुड़ाव की, हमारी सौन्दर्यमयी उपयोगी दृष्टि भी स्पष्ट कर देता है। पारिवारिक संस्कारों में रहकर भी स्वाधीनता की अलख जगाने वाली सेठ गोविन्ददास की आत्मकथा स्वाधीनता संघर्ष से स्वातन्त्र्योत्तर प्रथम आम चुनाव की एक विहंगम प्रस्तुति है। पारिवारिक सामाजिक तथा राजनैतिक मूल्यों के कितपय प्रसंग इस आत्मकथा की विशिष्टता है। राजेन्द्र प्रसाद का ऋषितुल्य व्यक्तित्व एवं सकारात्मक अभिव्यक्ति आत्मकथा की विशिष्टता है। धार्मिकता, पारिवारिकता तथा ग्रामीण परिवेश के जीवन मूल्यों को एक राजनीतिक ताने बाने के साथ प्रस्तुत करने का कौशल्य इस आत्मकथा की विशिष्टता है। इसी प्रकार यशपाल के तीन खण्ड़ों में प्रकाशित सिंहावलोकन क्रांतिकारियों की सोच उनकी वैचारिकता तथा संकल्प शक्ति के साथ उनके जीवन के मूल्यों का ऐतिहासिक विवेचन हमारे सामने रख देना है। राष्ट्रीय घटनाक्रम का लेखा जोखा भी आत्मकथा की रेखांकित करने योग्य विशेषतायें है। पाण्डेय बैचेन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा, 'अपनी खबर' सिर्फ स्वयं की होकर वह सामाजिक जीवन की गाथा है। सत्यता की इतनी प्रखर अभिव्यक्ति यह उग्र जी की ही विशिष्टता हो सकती है। तीस वर्ष की आयु में भोगे हुये अनुभवों की एक व्यापक निधि बिस्मिल की आत्मकथा में आर्यवत समाज की मूल्यवत्ता के प्रभाव से लेकर क्रांतिकारी मार्ग के दिव्य आचरण का अद्भुत विवेचन इस आत्मकथा की सौन्दर्य छटा है। इस प्रकार आत्मकथा साहित्य में समाजिक जीवन का, चरित्रों एवं घटनाक्रमों के आधार पर वर्णन मिलता है। इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि हमारे जीवन मूल्यों के मानदण्ड इन आत्मकथाओं के आधार पर निर्धारित किये जा सकते है। परम्परागत

जीवन मूल्यों की ओर भी देखने की दृष्टि में भी परिवर्तन हो रहा हैं। अतः आत्मकथायें नये मूल्यों के निर्धारण में प्रेरणा उद्‌बोधन, एवं सहायक सिद्ध हो सकती है। भारतीय सामाजिक जीवन के बहुविध परिवर्तनों की स्थितियों एवं कारणों का सम्यक अध्ययन भी इस साहित्य के द्वारा सहज संभव है। यही उपादेयता इन आत्मकथाओं के अनुशीलन की है। ऐसा मुझे लगता है।

एक 'तथाकथित' आत्मकथा की समीक्षा करते हुये एक जाने-माने समीक्षक ने एक वाक्य लिखा था- हर जगह तराजू अपने पक्ष में झुकी हुई है जो स्वभावतः आत्मकथा में होता है। क्यो उससे बचने के प्रयत्न का एक रूप यह नही है कि आत्मकथा में मात्र 'मैं' ही न रहे 'सब' रहें यानी वह व्यक्ति की कहानी रह कर भी युग की कहानी बने। लेकिन उसमें एक खतरा भी है। अगर 'मैं' के निर्माण में युग की गाथा का कोई योग नहीं है तो आत्मकथा मात्र इतिहास बन कर रह जाएगी।"[१]

विष्णु प्रभाकर का उपर्युक्त कथन आत्मकथा की सत्यता व स्पष्टता को प्रकट करता है। साहित्य से जीवन दर्शन होता है, युगीन वास्तविकता तथा सामाजिक स्थिति का बोध होता है। चूकि आत्मकथाकार स्वयं समाज में रहता है। सामाजिक जीवन व्यतीत करता है। इसलिये आत्मकथा में उसके स्वतन्त्र अस्तित्व के अलावा सबसे बड़ा भाग सामाजिक दस्तावेजों का होता है। आत्मकथाकार सामाजिक चेतना का केन्द्रबिन्दु होता है। इसलिये आत्मकथा में असंदिग्ध स्वायत्तता के बावजूद साहित्य का सामाजिक मूल्यों के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। क्योंकि आत्मकथाकार और समाज के बीच एक अनिवार्य तथा आंतरिक संबंध है। अतः साहित्य की प्रत्येक विधा की तरह आत्मकथा में भी समाज उसका आधार भूमि, प्रस्थान बिन्दु और लक्ष्य बिन्दु है। फिर चाहे वह किसी विशेष विषय पर हो या किसी विशिष्ट दृष्टि की ओर इंगित करती हो किन्तु उसमें सामाजिकता अनिवार्य रूप में होती है। जैसे कृश्न चन्दर लिखते है -

"हर तस्वीर हर लेख या हर जिंदगी इस काबिल नही होती कि अमर कहलाए।" हाँ। लेकिन...हर जिंदगी अपनी जगह पर इतनी जरूरी और खास जरूर होती है कि अगर वह किसी इतिहास, किसी तस्वीर या किसी लेख में विशेषता न भी प्राप्त कर पाए, केवल एक दिल में, किसी एक ख्याल में किसी एक भावना में, किसी एक कल्पना में या किसी एक क्षण में अपनी छाप या छाया छोड़ जाये तो उसे असफल या अर्थहीन नहीं कहा जायेगा।[२] रामदरश मिश्र अपनी आत्मकथा की विशिष्टता का उल्लेख करते हुये लिखते है- "मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ। मेरे जीवन में ऐसा कुछ नहीं है जो पाठकों को महान, असामान्य और बहुत मूल्यवान लगे। इसलिये मात्र अपनी कहानी कहना दंभ ही होता लेकिन मैंने जिस परिवेश की कहानी कही है और परिवेश के साथ व्यक्ति के जिन संबधों की कथा कही है वे निश्चित ही मूल्यवान है।"[३]

आत्मकथा में सामाजिकता का प्राधान्य रहने का कारण यही रहा हैं कि अपने चारों ओर फैले परिवेश के दबाव को प्रत्येक नया संवेदनशील लेखक सहता है, भोगता है कभी चाहे कभी अनचाहे, वह विक्षुब्ध हो उठता है। फलस्वरूप उसका मन प्रतिक्रियात्मक हो जाता है और वह उसे और के सम्मुख उजागर करने पर विवश हो जाता है। चाहे वह अच्छी घटनायें हो या बुरी। आत्मकथा के सामने सत्यता व ईमानदारी के अलावा अन्य कोई पर्याय नहीं रहता। जब एक लेखक आत्मकथा लिखने बैठता है तो उसके सामने सिर्फ वह स्वयं ही नही रहता उसके साथ जुड़े अन्य लोग भी उसके साथ होते है, जिसके बिना आत्मकथा का कोई औचित्य ही नहीं रहता। इस तरह लेखक परिवार, फिर समाज और फिर देश व विश्व से जुड़ता चला जाता है। इस संबंध में डॉ. देवराज उपाध्याय का कथन दृष्टव्य है।-

"जब आत्मदर्शन करने चलता हूँ तब जगप्रदर्शन होने लगता है अर्थात एक सर्वप्रथम अनुभूति या स्मृति को खोजने लगता हूँ तो एकाधिक स्मृतियां सामने आ जाती हैं।
कवीवर पंत के शब्दों में-

---

[१] मुक्त गगन में–विष्णु प्रभाकर, पृ.३२,३३

[२] आधे सफर की पूरी कहानी–कृष्ण चन्दर, पृ.६

[३] जहां मैं खड़ा हूं– रामदरश मिश्र, अपनी ओर से

"जग मग जग मग नभ का आंगन
लद गया कुन्द कलियों से धन,
यह आत्म और यह जगदर्शन।[४]

अब मनुष्य सामान्यतः अन्तर्जगत की ओर अधिक उन्मुख हो रहा है तथा अपने कार्य के प्रति अधिक सजग होता जा रहा है। जो श्रेष्ठ कलाकार अपनी संवेदनशीलता के कारण समसामयिक विचारधारा की लहरों से प्रभावित है, वे निःसन्देह आत्मकथा-लेखन अनिवार्य मानते हैं। आत्मकथाकार में सामाजिक दायित्व बोध इतना अधिक होता है कि वह अपनी शर्म, लज्जा छोड़ अपने जीवन की प्रत्येक सत्यता को उजागर करने में नही हिचकिचाता (चाहे वह फिर उसके या उसके घर के, पड़ोस के, दोस्त के या समाज के किसी हिस्से की कोई भी अच्छी, बुरी घटनायें हो), जैसे कमलादास ने अपने पुरखों, बुजुर्गो का रहन सहन, रूढ़िवादिता, नाजायज संबंध यहां तक कि अपने पति के समलिंगी व नाजायज संबंध का उल्लेख करने में भी नहीं चूकी। फिल्म अभिनेत्री हंसा वाडकर तो समाज से न डरते हुये जिस साहस व उदारता से फिल्म जगत, समाज व अपने जीवन का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत किया तथा अपनी जिंदगी में झेली शर्म की सारी परतों को खोल कर रख दिया है। जो उस पर लादी गई थी या जिसमें वह स्वयं भी शरीक थी। इसी तरह लेखिका अमृता प्रीतम ने भी अपने जीवन से संबंधित समस्त घटनाओं को चाहे वह परिवार से संबंधित है, समाज से संबंधित हो या उनके प्रेमियों के संबंध में हो सबकी सत्यता को उजागर किया है।

आत्मकथाओं की विशेषता यही रही है, कि कथाकार अपने लेखन द्वारा समाज को कुछ दे या न दे उसकी गलतियों और संकीर्णताओं को आगे सुधरने की दिशा जरूर दे सकता है। यह स्वतन्त्र और ईमानदार समाज के निर्माण मे सहायक भी हो सकता है। किसी व्यक्ति की जिंदगी अथवा समाज की दिशा देने के लिये आत्मकथाएं समाज को बदलने या संभलने का ज्यादा मौका दे सकती है। इसलिये जो लोग समाज की व्यवस्था के कारण अपना निर्णय खुद न ले सकने में जिंदगी से जूझते है और सफल या असफल होते हैं ऐसे लोगों की आत्मकथा ज्यादा सार्थक सिद्ध होती है। जैसे शंकरराव खरात, जो कि मराठी के मान्यवर साहित्यकार है। व दलित समाज के होने के कारण उन्हें मानव निर्मित मानवता रहित विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। अपने भोगे हुये यथार्थ तथा अपने जीवन पट का जीवंत आत्म-साक्षीकृत आलेख उन्होंने अपनी आत्मकथात्मक रचना 'तराल-अंतराल' में दिया है। यह समाज को समाज के की नग्न हकीकत से अवगत कराता है। यह आत्मकथ्य समाज को सोचने के लिये मजबूर भी कर देता है। उन्होंने कहा है कि- "आज तक मेरी जीवन यात्रा भले ही कष्ट-कंटकों में होकर गुजरी है; किन्तु अब अंधकार को भेदकर प्रकाश की किरणें दिखायी देने लगी है।"[५]

आत्मकथा में हम जीवन के सुख-दुख को तय करती आयी ठोस सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा शक्तियों और उनसे अपने संबंधो की प्रकृति को उजागर करते है। इस माध्यम से हम अपनी आस्था और अध्यव्यवसाय को हम अपने संवेदनात्मक विवेक की कसौटी पर परखते है। चूँकि यह कसौटी सामाजिक संसर्ग में निर्मित होती है इसलिये आत्मकथा का समाज को मुखातिब होना लाजिमी है। उसके साथ हम अपने दुख और खुशियाँ, अपने साहस और भय, अपने पुरूषार्थ और पराभव, अपनी प्रतिमा और असहायता को बांटना चाहते हैं। इस तरह हम अपनी क्षुब्ध और उद्वेलित चेतना को कुछ राहत तो दे ही पाते है, अपने आप से एक व्यापक और सजग संवाद में भी शरीक होते है।[६] कमलेश्वर के अनुसार- "मेरे लिये यह दौर मात्र शब्दों के संघर्ष का दौर नही, बल्कि शब्द के मानवीय अर्थ को जीवित रख सकने की कोशिश का दौर भी था... मैं सोचता था कि शब्द क्या सिर्फ साहित्य के लिये है? क्या मुझे शब्द

[४] बचपन के दो दिन—डॉ. देवराज उपाध्याय, पृ.१३९

[५] तराल— अंतराल — शंकरराव खरात, पृ.२३६

[६] आत्मकथा की संस्कृति—पवल चतुर्वेदी, पृ.—१४

की शक्ति को सिर्फ महान लेखकों की परम्परा में ही इस्तेमाल करना है? क्या ये शब्द मेरा और मेरे दौर के यथार्थ का साथ नहीं दे सकते?"[७]

आत्मकथा भोगे हुये सच और जीवन के अनुभवों का संकलन है। इसलिये जिंदगी काफी हद तक जी लेने के बाद ही वे सार्थक हो सकी है। निज का पूरा पूरा परिचय सच्चा ज्ञान है। और अहम् का सम्यक विस्तार वेदान्त और ब्रह्मवाद का सच्चा व्यवहारिक रूप हैं। परन्तु अपने को देख सकना और समझ सकना सरल नही है और दिखा सकना और समझा सकना उससे अधिक कठिन है। भविष्य को सुन्दर बनाने के लिये वर्तमान भूत का कैसा उपभोग करता है यह इतिहास की कला है। कलाकार अपनी तरकीब, अपनी व्यवस्था, अपना प्रकाश जिसे साहित्यिक भाषा में सौन्दर्य कहते है, समस्त कृति के निर्माण में साधे रहता है। मुंशी प्रेमचन्दजी समझ रहे थे कि वह सिर्फ अपने लिये नहीं, अपने जैसे और भी न जाने कितने लोगो के लिये लड़ रहे हैं जो गुमनाम है, मगर जिन्होने आँखे खोलकर किसी बड़े आदर्श के लिये सच्चा कष्ट सहा है और जिनके पास कुछ कहने को है- "बड़े-बड़े लोगों के अनुभव बड़े-बड़े होते हैं, लेकिन जीवन में ऐसे कितने ही अवसर आते है जब छोटों के अनुभव से ही हमारा कल्याण होता है। 'सुई की जगह तलवार नहीं' काम दे सकती।.. मेरा खयाल है कि मेरे घर के मेहतर के जीवन में भी कुछ ऐसे रहस्य है जिनसे हमें प्रकाश मिल सकता है।.... किसी भी मनुष्य का जीवन इतना तुच्छ नही है। जिसमें बड़े से बड़े महच्चरितों के लिये भी कुछ न कुछ विचार की सामग्री न हो.....।[८]

दरअसल आत्मकथा लिखने के लिये एक बड़े नैतिक और वैचारिक साहस की जरूरत होती है, जिसके बिना उसके साथ न्याय नहीं हो सकता। उग्र ने जहाँ भारतीय समाज का, अपने परिवार की हकीकत को बिना किसी बात की परवाह किये अपनी आत्मकथा 'अपनी खबर' में उल्लेख किया हैं किन्तु फिर भी मन के किसी कोने में समाज का डर उनमें व्याप्त था वे कहते है- लिख तो डालू, लेकिन जीवित महाशयों की बिरादरी-अन्ध भक्त बिरादरी-का बड़ा भय है। बहुतों के बारे में सत्य प्रकट हो जाए तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप-लुप करने लगे। कुछ तो मरने-मारने पर भी आमादा हो सकते है।[९] किन्तु फिर भी उग्र जी को सच को सामने लाने का अद्भुत साहस था, तथा झूठ बोलने के बदले कोई भी सजा सहने को भी वह तैयार थे। उग्र का विश्वास मनुष्य के वास्तविक चित्रण में है।

महात्मा गांधी ने आत्मकथा में भारतीय संस्कृति को बहुत ही प्रभावशाली व सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसमें भारतीय परम्परा का वर्णन, सामाजिक कार्य, दलितों की सेवा, आदर्श, त्याग, यथार्थ का आध्यात्मिक विश्लेषण है। उन्होंने सम्पूर्ण समाज क्या सम्पूर्ण भारत की संस्कृति का विश्लेषण करके सम्यक मार्गदर्शन दिया है। क्योंकि उनकी जिंदगी उनके लिये व्यक्तित्व की तमाम सम्भावनाओं की निरन्तर खोज और सर्जना का माध्यम थी। 'मैं' की बजाय 'आत्मा' को उन्होंने आत्मकथा के केन्द्र में प्रतिष्ठित किया जो सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय अवधारणा है।

पंडित जवाहर लाल नेहरूजी की आत्मकथा में भी सामाजिकता की अमूल्य घटनायें व दृश्य व संस्कृति का यथार्थ चित्रण मिलता है। उन्होने आत्मकथा के संबंध में लिखा-"मेरी ये जीवन घटनाएँ शायद बहुत अधिक रोमांचकारी नहीं है। इन घटनाओं में कोई अपूर्वता नही है, क्योंकि इन बातों के सुख-दुःखो में हजारों देश- भाईयों और बहनों का हिस्सा है। इसलिये जुड़ी-जुड़ी भावनाओं और हर्ष-विषाद, प्रचण्ड हलचलों और बरबस एकान्तवास का यह वर्णन, हम सबका संयुक्त वर्णन है।[१०] आत्मकथा की संरचना में एक लोकोन्मुख बहसधर्मिता निहित है। वह अपने मिजाज से ही अभिजात्य के विरूद्ध है, क्योंकि उसमें अपने अंतरंग का निश्चल उद्घाटन होता है। न वह किसी से पर्दा करती है न किसी को अछूत मानती है। स्वामी श्रद्धानन्द जहां कर्मक्षेत्र के अद्वितीय योद्धा थे उन्होंने 'कल्याण मार्ग के पथिक' में

[७] यादो के चिराग–कमलेश्वर, पृ.१७

[८] कलम का सिपाही–अमृतराय, पृ.४६५

[९] अपनी खबर–पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र, प्रवेश से १०

[१०] मेरी कहानी–जवाहर लाल नेहरू, पृ. ८२८

अपने प्रारम्भिक जीवन की कटु यथार्थता तथा अनाचार और पतन के मार्ग से विमुख होकर श्रेय मार्ग की ओर कदम बढ़ाने की एक अद्‌भुत रोमांचक किन्तु शिक्षाप्रद कहानी कही है। जिसमें सामाजिकता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत है।

आत्मकथा में जिंदगी को काफी अर्से तक जी लेने के बाद या कई जिंदगी से मुठभेड़ कर लेने के बाद या यथार्थ से रू-ब-रू हो लेने के बाद, सपनों के टूटने या साकार होने के बाद जो लिखा जाता है वह व्यक्ति से अधिक समाज का अनुभव या सपना होता है, संघर्ष करते और जूझते हुये जिंदगी जीने के अनेक सत्यों से जब हम रू-ब-रू हो लेते है तो परिपक्व निष्कर्ष और संकल्प हाथ लगते हैं। तब आत्मकथाएँ इच्छाओं की नहीं बल्कि तत्वों के साथ-साथ अनुभवों के साक्षात्कारों की कथा होती है।[११] परिवर्तन नित्य हो रहे है तथा पीढ़ियों के बीच वैचारिक टकराव भी इन मूल्यों को लेकर हो रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में दलितों, आदिवासियों, पिछड़ो में एक नई वैचारिक क्रान्ति आई है। स्वातन्त्र्योत्तर परिवेश में शिक्षा के व्यापक अभियान तथा संचार माध्यमों ने जीवन दृष्टि को विकसित किया है। इससे सामान्य जनों का भी आत्मविश्वास बढ़ा है। सामाजिक अधिकार तथा समता बोध, स्वतन्त्रता के मूल्य, राजनैतिक परिपक्वता, आर्थिक सुधार तथा नागरी जीवन के साथ ही ग्रामीण जीवन में भी विकसित होता हुआ आधुनिक बोध हमारे सामाजिक बोध का मानदण्ड निश्चित करता है। जहां पुराने मूल्य अवक्षित हो रहे है तथा परम्परागत जीवन मूल्यों की ओर देखने की दृष्टि में भी परिवर्तन हो रहा है। अतः यह आत्मकथायें नये मूल्यों के निर्धारण में प्रेरक उद्‌बोधक एवं सहायक सिद्ध हो सकती है। भारतीय सामाजिक जीवन के बहुविध परिवर्तनों की स्थितियों एवं कारणों का सम्यक अध्ययन भी इस साहित्य के द्वारा सहज संभव है। यही उपादेयता इन आत्मकथाओं के अनुशीलन की है। ऐसा मुझे लगता है।

निष्कर्ष –

आत्मकथा का लेखन सहज नही है, उसकी रचनात्मकता में बाहय ही महत्वपूर्ण नहीं होता, वरन अंतरंग की भी बडी भूमिका होती है। आंतरिक संवेग मनुष्य के जीवन में नये संस्कार और अनुभवों के रचयिता होते है। जीवन की विविधता ही आत्मकथा लेखन में उपयोगी नहीं होती वरन् अर्न्तदृष्टि के आधार पर तमाम अनुभव और संस्मरण एक व्यवस्थित लेखन को सौंप दिये जाते है। यह व्यवस्थित लेखन ही आत्मकथा की सर्जना की सार्थकता बनता है। इस संदर्भ में शिप्ले की बात ज्यादा कारगर मिलती है। जीवन की विशाल लंबी अनुभूतियों की यात्रा आत्मकथा को लंबी दूरी तक ले जाकर भी कही क्षीण नहीं होने देती, उन्ही के मतानुसार ''उस लेखक के जीवन का एक श्रृंरवलाबध्द ऐसा विवरण कह सकते है, जिससे वह अपने विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से सामने रखता है या फिर अपनी अर्न्तदृष्टि से उनको संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करता है।'' आत्मकथा के प्रत्यक्षवादी परम्परा में अध्ययन वस्तु सामाजिक तथ्य है। साहित्यकार सामाजिक घटनाओं को सामाजिक तथ्य के रूप में देखता है। सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने, अनुभव करने के वे तरीके हैं जो व्यक्ति के लिये बाहय होते है तथा जिनकी प्रकृति बाध्यतामूलक होती है। व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व बनाये रखने की क्षमता इन तथ्यों में होती है। साहित्यकार की दृष्टि में समाज वैज्ञानिक का कार्य है कि वह किसी भी घटना की व्याख्या हेतु उसको जन्म देने वाले कारकों तथा उसके द्वारा पूर्ण किये जाने वाले प्रकार्य का विश्लेषण करें। सामाजिक घटना का प्रकार्य किसी न किसी उद्‌देश्य की पूर्ति हेतु होता है। तथा उसकी खोज वैयक्तिक चेतनाओं की अपेक्षा समूह की आन्तरिक संरचनाओं में भी सम्भव है।

इन्ही सामाजिक घटनाओं को तथ्य के रूप में विश्लेषित कर ऐसे सिंध्दान्तों एवं निष्कर्षो को स्थापित कर सके जो सत्य की प्राप्ति में सहायक हो सके। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की वस्तुनिष्ठ दृष्टि, सामाजिक अन्तः क्रियाओं, सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक संबंधों की सामान्य दशाओं परिणामों एवं प्रकार्यात्मक अंर्तसंबंधों के अध्ययन पर केंद्रित रही है। जिसके परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं का विश्लेषण संभव है।

[११] हंस सितम्बर २००५, पृ. ५०